॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नम: ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

मुण्डकोपनिषत्

विषय सूची

॥अथ मुण्डकोपनिषद ॥ 3

प्रथम मुण्डक 5

    प्रथम खण्ड 5

    द्वितीय खण्ड 10

द्वितीय मुण्डक 16

    प्रथम खण्ड 16

    द्वितीय खण्ड 21

तृतीय मुण्डक 26

    प्रथम खण्ड 26

    द्वितीय खण्ड 31

शान्तिपाठ 36

॥ श्री हरि ॥

॥अथ मुण्डकोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते है कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

जिनका सुयश सभी ओर फैला हुआ है, वह इन्द्रदेव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले पूषा हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, हमारे जीवन से अरिष्टों को मिटाने के लिए चक्र सदृश्य, शक्तिशाली गरुड़देव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें तथा बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ मुण्डकोपनिषद ॥

॥अथ प्रथममुण्डके: प्रथमः खण्डः॥

प्रथम मुण्डक

प्रथम खण्ड

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता
भुवनस्य गोप्ता। स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय
ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १॥

ॐ इस परमेश्वरके नामका स्मरण करके उपनिषद्का आरम्भ किया जाता है । इसके द्वारा यहाँ यह सूचित किया गया है कि मनुष्यको प्रत्येक कार्य के आरम्भ में ईश्वर का स्मरण तथा उनके नाम का उच्चारण अवश्य करना चाहिये।

सम्पूर्ण जगत के रचयिता और सभी लोकों की रक्षा करनेवाले, चतुर्मुख ब्रह्माजी, देवताओं में सर्वप्रथम प्रकट हुए। उन्होने सबसे

बड़े पुत्र अथर्वा को समस्त विद्याओं की आधारभूता ब्रह्मविद्या[1] का भलीभाँति उपदेश किया ॥१॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तं पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २॥

ब्रह्मा ने जिस विद्या का अथर्वा को उपदेश दिया था, यही ब्रह्मविद्या अथर्वा ने पहले अङ्गी ऋषि से से कही। उन अङ्गी ऋषि ने वह ब्रह्म विद्या भारद्वाज गोत्री सत्यवह नामक ऋषि को बताई। भारद्वाज ने पहले वालों से पीछे वालों को प्राप्त हुई उस परम्परागत विद्या को अंगिरा नामक ऋषि से कहा। ॥२॥

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३॥

यह विख्यात है कि शौनक नाम से प्रसिद्ध मुनि जो अति बृहद विद्यालय- ऋषिकुल के अधिष्ठाता थे[2], उन्होंने विधिवत्-शास्त्रविधि के अनुसार महर्षि अंगिरा की शरण ली और उनसे विनयपूर्वक पूछा भगवन्! किसके जान लिये जाने पर सब कुछ जाना हुआ हो जाता है? यह मेरा प्रश्न है अर्थात जिसको भलीभाँति जान लेनेपर यह जो कुछ देखने, सुनने और अनुमान करने में आता है, सब-का-सब जान

[1] जिस विद्यासे ब्रह्म के पर और अपर-दोनों स्वरूपों का पूर्णतया ज्ञान हो

[2] शौनक नाम से प्रसिद्ध एक महर्षि थे, जो अत्यंत बड़े विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता थे, पुराणों के अनुसार उनके ऋषिकुलमे अहासी हजार ऋपि रहते थे।

लिया जाता है, वह परम तत्त्व क्या है ? कृपया बतलाइये कि उसे कैसे जाना जाय? ॥३॥

तस्मै स होवाच ।
द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्मयद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥ ४॥

उन शौनक मुनि से विख्यात महर्षि अंगिरा बोले ब्रह्म को जानने वाले, इस प्रकार निश्चयपूर्वक कहते आये हैं कि दो विद्याएँ मनुष्य के लिए जानने योग्य है। एक परा और दूसरी अपरा। ॥४॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं
निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति ।
अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५॥

उन दोनों में से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, शिक्षा[3], कल्प[4], व्याकरण[5], निरुक्त[6], छन्द[7], ज्योतिष[8], यह सभी अपरा विद्या

---

[3] वेदो का पाठ अर्थात् यथार्थ उच्चारण करने की विधि का उपदेश 'शिक्षा' है।
[4] जिसमें यज्ञ-याग आदि की विधि बतलायी गयी है, उसे 'कल्प' कहते हैं।
[5] वैदिक और लौकिक शब्दों के अनुशासन का-प्रकृति प्रत्यय विभागपूर्वक गद्य साधनकी प्रक्रिया, शब्दार्थ बोध के प्रकार एव शब्द प्रयोग आदि के नियमों के उपदेश का नाम 'व्याकरण हे ।
[6] वैदिक शब्दों का जो कोष है, जिसमे अमुक पद अमुक वस्तु का वाचक हैं यह बात कारणसहित बतायी गयी है, उसको निरुक्त' कहते है ।
[7] वैदिक छन्दों की जाति और भेद बतलाने वाली विद्या 'छन्द' कहलाती है।
[8] ग्रह और नक्षत्रों की स्थिति, गति और उनके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है। इन सब बातो पर जिसमे विचार किया गया है, वह ज्योतिष विद्या है ।

के अन्तर्गत हैं। तथा जिससे वह अविनाशी परब्रह्म तत्त्व से जाना जाता है, वह परा विद्या है। ॥५॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् ।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः
॥६॥

यह जो जानने में न आनेवाला, पकड़ने में न आनेवाला, गोत्र आदिसे रहित, रंग और आकृति से रहित, नेत्र कान आदि ज्ञानेन्द्रियों से रहित और हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियों से भी रहित है। तथा यह जो नित्य सर्वव्यापी, सब में विद्यमान, अत्यंत सूक्ष्म और अविनाशी परब्रहा है। उस समस्त प्राणियों के प्रथम कारण को ज्ञानीजन सर्वत्र परिपूर्ण देखते हैं। ॥६॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ॥७॥

जिस प्रकार मकड़ी जाले को बनाती है और निगल जाती है तथा जिस प्रकार पृथ्वी में अनेकों प्रकार की ओषधियों उत्पन्न होती हैं और जिस प्रकार जीवित मनुष्य से केश और रोएँ उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार अविनाशी परब्रह्म से यहाँ इस सृष्टि में सब कुछ उत्पन्न होता है। ॥७॥

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥ ८॥

परब्रह्म विज्ञानमय तप से वृद्धि को प्राप्त होता है। उससे अन्न उत्पन्न होता है, अन्न से क्रमश: प्राण, मन, सत्य (स्थूलभूत), समस्त लोक और कर्म तथा कर्म से अवश्यम्भावी सुख-दुःख रूप फल उत्पन्न होता है ॥८॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तापः ।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायाते ॥ ९॥

जो सर्वज्ञ तथा सभी को जाननेवाला है, जिसका ज्ञानमय तप है, उसी परमेश्वर से यह विराटस्वरुप जगत तथा नाम रूप और भोजन उत्पन्न होते है। ॥९॥

शौनक ऋपिने यह पूछा था कि किसको जाननेसे यह सब कुछ जान लिया जाता है ? इसके उत्तरमें समस्त जगत के परम कारण परब्रह्म परमात्मा से जगत की उत्पत्ति बतलाकर संक्षेप में यह समझाया गया है कि उन सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सबके आदिकारण तथा कर्ता-धर्ता परमेश्वर को जान लेनेप र यह सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

॥ इति मुण्डकोपनिषदि प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः ॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥१॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मुण्डकोपनिषद ॥

॥अथ प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः॥

द्वितीय खण्ड

तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि ।
तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥ १॥

यह सर्वविदित सत्य है कि बुद्धिमान् ऋषियों ने जिन कर्मों को वेद-मन्त्रों में देखा था, वह तीनो वेदों मे बहुत प्रकार से व्याप्त है । हे सत्य को चाहनेवाले मनुष्यों तुम लोग उनका नियमपूर्वक अनुष्ठान करो, इस मनुष्य शरीर में तुम्हारे लिये यही शुभ कर्म की फल प्राप्ति का मार्ग है। ॥१॥

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाऽऽज्यभागावन्तरेणाऽऽहुतीः प्रतिपादयेत् ॥ २॥

जिस समय हविष्य को देवताओं के पास पहुंचानेवाली अग्नि के प्रदीप्त हो जानेपर उसमें ज्वालाएँ लपलपाने लगती हैं। उस समय आज्यभाग के बीच में अन्य आहुतियों को डालें। ॥२॥

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च
।
अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥ ३॥

जिसका अग्निहोत्र दर्श नामक यज्ञ जसे रहित है, पौर्णमास नामक यज्ञ से रहित है, चातुर्मास्य नामक यज्ञ से रहित है, आग्रयण कर्म से रहित है तथा जिसमें अतिथि सत्कार नहीं किया जाता। जिसमें समयपर आहुति नहीं दी जाती। जो बलिवैश्वदेव नामक कर्म से रहित है तथा जिसमें शास्त्र-विधि की अवहेलना करके हवन किया गया है, ऐसा अग्निहोत्र उस अग्निहोत्री के सातों पुण्य लोकों का नाश कर देता है अर्थात् उस यज्ञ के द्वारा उसे मिलने वाले जो पृथ्वीलोक से लेकर सत्यलोक तक सातों लोकों में प्राप्त होने योग्य भोग हैं, उनसे वह वञ्चित रह जाता है। ॥३॥

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥ ४॥

जो काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगनी तथा विश्वरुची देवी, यह सात अग्निदेव की लपलपाती हुई जिह्वाएँ हैं। ॥४॥

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् ।
तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥ ५॥

जो कोई भी अग्निहोत्री इन देदीप्यमान ज्वालाओं में ठीक समयपर, अग्निहोत्र करता है। उस अग्निहोत्री को निश्चय ही अपने साथ लेकर यह आहुतियां सर्य की किरनें बनकर यहाँ पहुँचा देती है। जहाँ देवताओं का एकमात्र स्वामी इंद्र निवास करता है। ॥५॥

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति ।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः
॥६॥

वह देदीप्यमान आहुतियां आओ, आओ, यह तुम्हारे शुभ कर्मों से प्राप्त पवित्र ब्रह्मलोक है। इस प्रकार की वाणी बार बार कहती हुई और उसका आदर सत्कार करती हुई, उस यजमान को सूर्य की रश्मियों द्वारा ले जाती हैं। ॥६॥

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥ ७॥

निश्चय ही यह यज्ञरूप अठारह नौकाएँ अदृढ (अस्थिर)हैं। जिनमें नीची श्रेणी का उपासनारहित सकाम कर्म बताया गया है। जो मूर्ख यही श्रेष्ठ कल्याण का मार्ग है ऐसा मानकर इसकी प्रशंसा करते हैं। वह बार-बार निसंदेह वृद्धावस्था और मृत्यु को प्राप्त होते रहते है ॥ ७॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ८॥

अविद्या के भीतर स्थित होकर भी अपने-आप बुद्धिमान् बनने वाले और अपने को विद्वान् माननेवाले वह मूर्खलोग बार-बार आघात (कष्ट) सहन करते हुए ठीक वैसे ही भटकते रहते हैं, जैसे अन्धे के द्वारा ही चलाये जाने वाले अंधे अपने लक्ष्य तक न पहुँचकर बीच में ही इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते रहते है।॥ ८॥

अविद्यायं बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।
यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥९॥

वह मूर्ख लोग उपासना रहित सकाम कर्मों में बहुत प्रकार से भोगते हुए, हम कृतार्थ हो गये ऐसा अभिमान कर लेते हैं क्योंकि वे सकाम कर्म करनेवाले लोग विषयों की आसक्ति के कारण, कल्याण के मार्ग को नहीं जान पाते। इस कारण बार बार दुःख से आतुर हो पुण्योर्जित लोकों से हटाये जानेपर नीचे गिर जाते हैं। ॥९॥

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥ १०॥

इष्ट और पूर्त[9] इत्यादि सकाम कर्मों को ही श्रेष्ठ माननेवाले अत्यन्त मूर्ख लोग उससे भिन्न वास्तविक श्रेय को नहीं जानते। वह पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग के उच्चतम स्थान में जाकर श्रेष्ठ कर्मों के

[9] यज्ञ-यागादि श्रोत कर्मोको 'इष्ट' तथा बावली, कुआँ खुदवाना और बगाचे लगाना आदि स्मृति विहित कर्म को पूर्तः कहते है।

फलस्वरूप वहाँ के भोगों का अनुभव करके इस मनुष्यलोक में अथवा इससे भी अत्यन्त हीन योनियों मे प्रवेश करते हैं। ॥१०॥

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ११॥

किन्तु यह जो वन में रहने वाले शांत स्वभाव वाले विद्वान् तथा भिक्षा के लिये विचरनेवाले मयमरूप तप तथा श्रद्धा का सेवन करते हैं, वह रजोगुण रहित सूर्य के मार्ग से वहाँ चले जाते है, जहाँ पर वह जन्म-मृत्यु से रहित, नित्य, अविनाशी, परम पुरुष परमात्मा रहते हैं। ॥११॥

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्
॥१२॥

कर्म से प्राप्त किये जाने वाले लोकों की परीक्षा करके, ब्राहाण वैराग्य को प्राप्त हो जाय अथवा यह समझ ले कि किये जानेवाले सकाम कर्मों से स्वत: सिद्ध नित्य परमेश्वर नहीं मिल सकता। वह उस परब्रहा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हाथ में समिधा लेकर, वेद को भलीभाँति जाननेवाले और परब्रहा परमात्मा में स्थित गुरु के पास ही विनयपूर्वक जाय। ॥१२॥

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३॥

वह विद्वान ज्ञानी महात्मा शरण में आये हुए पूर्णतया शान्त चित्तवाले मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुए, उस शिष्य को ब्रह्मविद्या का तत्त्व-विवेचनपूर्वक भली भाँति उपदेश करे। जिससे वह शिष्य नित्य अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तम का ज्ञान प्राप्त कर सके। ॥१३॥

॥ इति मुण्डकोपनिषदि प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥२॥

॥ इति मुण्डकोपनिषदि प्रथममुण्डः ॥

॥ प्रथम मुण्डक समाप्त ॥१॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मुण्डकोपनिषद ॥

॥ द्वितीय मुण्डके प्रथमः खण्डः ॥

द्वितीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

तदेतत् सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ।
तथाऽक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥ १॥

हे प्रिय! वह सत्य यह है। जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि में से उसी के समान रूपवाली हजारों चिनगारियाँ, अनेक प्रकार से प्रकट होती हैं। तथा उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से अनेकों प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं, और उसी में विलीन हो जाते हैं। ॥ १ ॥

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ॥ २॥

निश्चय ही दिव्य, पूर्णरूप, आकाररहित समस्त जगत के बाहर और भीतर भी व्याप्त जन्मादि विकारों से अतीत प्राणरहित, मनरहित

होनेके कारण र्वथा विशुद्ध है तथा इसीलिये अविनाशी जीवात्मा से अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३॥

इसी परमेश्वर से प्राण उत्पन्न होता है तथा अन्तःकरण, समस्त इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज जल और सम्पूर्ण प्राणियों को धारण करनेवाली पृथ्वी यह सभी उत्पन्न होते हैं।॥३॥

अग्नीर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः ।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा
॥४॥

इस परमेश्वर का अग्नि मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं, सभी दिशाएँ दोनों कान हैं और प्रकट वेद वाणी हैं तथा वायु प्राण है तथा जगत् हृदय है। इसके दोनो पैरों से पृथ्वी उत्पन्न हुई है। यही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा है। ॥ ४ ॥

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् ।
पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः ॥ ५॥

उससे ही अग्निदेव प्रकट हुआ, जिसकी समिधा सूर्य है । उस अग्नि से सोम उत्पन्न हुआ, सोम से मेघ उत्पन्न हुए और मेघों से वर्षा द्वारा पृथ्वी में अनेकों प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न हुईं। औषधियों के भक्षण

से उत्पन्न हुए वीर्य को पुरुष स्त्री मे सिंचित करता है, जिससे संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार उस परम पुरुष से ही अनेकों प्रकार के जीव नियमपूर्वक उत्पन्न हुए हैं। ॥५॥

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च ।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥ ६॥

उस परमेश्वर से ही ऋग्वेदकी ऋचाएँ, सामवेद के मन्त्र, यजुर्वेद की श्रुतियां और दीक्षा[10] तथा समस्त यज्ञ, ऋतु[11] एवं दक्षिणाएँ तथा संवत्सररूप काल, यजमान और सभी लोक उत्पन्न हुए हैं, जहाँ चन्द्रमा प्रकाश फैलाता है और जहाँ सूर्य प्रकाश देता है। ॥६॥

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि ।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥ ७॥

तथा उसी परमेश्वर से अनेकों भेद वाले देवता उत्पन्न हुए, साध्यगण, मनुष्य, पशु-पक्षी, प्राण-अपान वायु, धान, जों आदि अन्न, तथा तप, श्रद्धा, सत्य और ब्रह्मचर्य एवं यज्ञ इत्यादि के अनुष्ठान की विधि भी, यह सभी उत्पन्न हुए हैं। ॥७॥

---

[10] शास्त्रविधि के अनुसार किसी यज्ञ को आरम्भ करते समय यजमान जिस संकल्प के साथ उसके अनुष्ठान सम्बन्धी नियमों के पालन का मत लेता है, उसका नाम दीक्षा' है।

[11] यज्ञ और ऋतु-यह यज्ञ के ही दो भेद है। जिन यज्ञों में यूप बनानेकी विधि है, उन्हें 'ऋतु' कहते हैं।

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः ।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥८॥

उसी परमेश्वर से सात प्राण उत्पन्न होते हैं तथा अग्नि की सात लपटें, सात विषयरूपी समिधाएँ, सात प्रकार के हवन तथा सात लोक और इन्द्रियोंके सात द्वार उसी से उत्पन्न होते हैं जिनमे प्राण विचरते हैं। हृदयरूप गुफा में शयन करनेवाले यह सात-सात के समुदाय उसी के द्वारा सब प्राणियों मे स्थापित किये हुए हैं।॥८॥

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥ ९॥

इसी से समस्त समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए हैं। इसी से प्रकट होकर अनेक रूपों वाली नदियाँ बहती हैं तथा इसी से सम्पूर्ण औषधियां और रस उत्पन्न हुए हैं। जिस रस से पुष्ट हुए शरीरों में ही सबका अन्तरात्मा परमेश्वर सभी प्राणियों की आत्मा के सहित उनके हृदय में स्थित है। ॥ ९॥

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् ।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ॥ १०॥

तप, कर्म और परम अमृत रूप ब्रह्म यह सब कुछ परमपुरुष पुरुषोत्तम ही है। हे प्रिय! इस हृदयरूप गुफा में स्थित अन्तर्यामी

परमपुरुष को जो जानता है, वह यहाँ इस मनुष्यशरीर में ही अविद्या जनित गॉठ को खोल डालता है अर्थात् सभी प्रकार के संशय और भ्रमसे रहित होकर परब्रह्म पुरुषोत्तम को प्राप्त हो जाता है ॥१०॥

॥ इति मुण्डकोपनिषदि द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥१॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मुण्डकोपनिषद ॥

॥द्वितीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः॥

द्वितीय खण्ड

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत् समर्पितम् ।
एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥१॥

जो प्रकाशस्वरूप, अत्यंत समीपस्थ, हृदयरूप गुफा में स्थित होने के कारण गुहाचर नाम से प्रसिद्ध और महान पद (परम प्राप्य) है। जितने भी चेष्टा करनेवाले, श्वास लेने वाले और ऑखो को खोलने बंद करने वाले प्राणी हैं, यह सभी इसी में समर्पित, इसी में प्रतिष्ठित हैं। इस परमेश्वर को तुम लोग जानो जो सत और असत है। सबके द्वारा वरण करने योग्य और अतिशय श्रेष्ठ हैं तथा समस्त प्राणियों की बुद्धि से परे अर्थात् जानने में न आनेवाला हैं। ॥१॥

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च ।
तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥२॥

जो दीप्तिमान् है और सूक्ष्मो से भी सूक्ष्म है। जिनमें समस्त लोक और उन लोकों में रहनेवाले प्राणी स्थित हैं। वही यह अविनाशी ब्रह्म है, वही प्राण है, वही वाणी, और मन है, वही यह सत्य है। वह अमृत है। हे प्रिय! उन भेदने योग्य लक्ष्य को तू भेद। अर्थात् आगे बताने जाने वाले प्रकार से साधन करके उसमें तन्मय हो जा। ।॥२॥

धनुर् गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं सन्धयीत ।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥ ३॥

उपनिषद में वर्णित प्रणव रूप महान धनुष को लेकर, उस पर निश्चय ही उपासना द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ, बाण चढाकर, फिर चित्त के द्वारा उस बाण को खींचकर, हे प्रिय ! उस परम अक्षर पुरुषोत्तम को ही लक्ष्य मानकर बेधे। दूसरे शब्दों में ओंकार का प्रेमपूर्वक उच्चारण एवं उनके अर्थरूप परमात्मा का प्रगाढ चिन्तन ही उनकी प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है ॥३॥

प्रणवो धनुः शारो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ॥ ४॥

यहाँ ओमकार ही धनुप है, आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमादरहित मनुष्यद्वारा ही बेधे जाने योग्य है। अतः उसे वेधकर बाणकी तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिये। ॥४॥

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ॥ ५॥

जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी और उनके बीच का आकाश तथा समस्त प्राणों के सहित मन गुंथा हुआ है। उसी सबके आत्मरूप परमेश्वर को जानो। दूसरी सभी बातों को सर्वथा छोड़ दो, यही अमृत का सेतु है। ॥५॥

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः ।
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ ६॥

रथ के पहिये में जिस प्रकार अरे जुड़े होते हैं इसी तरह जहाँ सब नाड़ियाँ जुडी हुई हैं वहाँ हृदय मे रोगादि से जो आत्मा प्रकट होता है। उस परमात्मा का ॐ द्वारा ध्यान करना चाहिए, जिससे अज्ञान, अन्धकार से पार हो जाओ जिससे तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। ॥६॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ।
तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति ॥ ७॥

जो सब विषयों को जानता और उसको समझता है, इस भूमि पर जिनकी महिमा प्रसिद्ध है। जोकि निर्मल हृदय आकाश मे विद्यमान ब्रह्मन्धरा नाडी में स्थित हैं। जो मन के द्वारा प्राण और शरीर का

संचालक है, उस आत्मा के ज्ञान से ही धीर पुरुष उस आनंदरूप अमृत परमात्मा को जानते हैं। ॥७॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥८॥

उस निर्गुण और सगुन भेद से जानने योग्य ब्रह्म के ज्ञान होने पर हृदय की गाँठ खुल जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं, और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं। अर्थात उस निर्गुण और सगुन भेद से जानने योग्य ब्रह्म को जान लेने पर अविद्यारूप गॉठ खुल जाती है, जिसके कारण इसने इस जड शरीरको ही अपना स्वरूप मान रक्खा है । इतना ही नहीं, इसके समस्त समय सर्वथा कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते है। यह जीव सब बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त होकर परमानन्दम्वरूप परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है। ॥८॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषं ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः ॥९॥

वह निर्मल, अवयवरहित, परब्रह्मः प्रकाशमय परम कोष में, परमधाम में विराजमान है। सर्वथा विशुद्ध समस्त ज्योतियों की भी ज्योति है, जिस को आत्मज्ञानी महात्माजन जानते हैं। ॥९॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १०॥

वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा और तारागण ही तथा न यह बिजलियाँ ही वहाँ कौंधती हैं। फिर इस अग्नि के लिये तो कहना ही क्या है क्योंकि उसके प्रकाशित होने पर ही उसी के प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत प्रकाशित होता है। ॥ १०॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ ११॥

यह अमृतस्वरूप परब्रह ही सामने है, परब्रह्म ही पीछे है, परब्रह्म ही दायीं ओर तथा बायीं ओर, नीचे की ओर तथा ऊपर की ओर भी फैला हुआ है। यह जो सम्पूर्ण जगत् है, यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है ॥ ११॥

॥ इति मुण्डकोपनिषदि द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥२॥

॥ द्वितीय मुण्डक समाप्त ॥२॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मुण्डकोपनिषद ॥

॥तृतीय मुण्डके प्रथमः खण्डः॥

तृतीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति ॥१॥

एक साथ रहनेवाले तथा परस्पर समभाव रखने वाले दो पक्षी – जीवात्मा और परमात्मा एक ही वृक्ष (शरीर) या आश्रय लेकर रहते हैं। उन दोनों मे से एक तो उस वृक्ष के कर्मरूप फलों का स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, किंतु दूसरा न खाता हुआ केवल देखता रहता है। ॥१॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनिशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥२॥

पूर्वोक्त शरीर रूपी समान वृक्षपर रहनेवाला जीवात्मा शरीर की गहरी आसक्ति में डूबा हुआ है। असमर्थता रूप दीनता का अनुभव

करता हुआ, मोहित होकर शोक करता रहता है। जब कभी भगवान की अहैतु की दया से भक्तों द्वारा नित्य सेवित तथा अपने से भिन्न, परमेश्वर को और उनकी महिमा को यह प्रत्यक्ष कर लेता है, तब सर्वथा शोक रहित हो जाता है। ॥२॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥३॥

जब यह द्रष्टा जीवात्मा सबके शासक ब्रह्मा के भी आदि कारण, सम्पूर्ण जगत के रचयिता, दिव्य प्रकाश स्वरूप परमपुरुष को प्रत्यक्ष कर लेता है। उस समय पुण्य-पाप दोनों को भलीभाँति हटाकर निर्मल हुआ वह ज्ञानी महात्मा सर्वोत्तम समता को प्राप्त कर लेता है। ॥३॥

प्रणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी ।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥४॥

यह परमेश्वर ही प्राण है, जो सब प्राणियों के द्वारा प्रकाशित हो रहा है। इसको जाननेवाला ज्ञानी अभिमान पूर्वक बढ-चढकर बातें करनेवाला नहीं होता। किंतु वह यथायोग्य भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करता हुआ सबके आत्मरूप अन्तर्यामी परमेश्वर में क्रीडा करता रहता है और सबके आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर में ही रमण करता रहता है। यह ज्ञानी भक्त ब्रह्मवेत्ताओं में भी श्रेष्ठ है। ॥४॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्म सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥५॥

यह शरीर के भीतर ही हृदय में विराजमान प्रकाश स्वरूप और परम विशुद्ध परमात्मा निस्संदेह सत्य भाषण तप और ब्रह्मचर्य पूर्वक, यथार्थ ज्ञान से ही सदा प्राप्त होनेवाला है। जिसे सब प्रकार के दोषों से रहित हुए यत्नशील साधक ही देख पाते हैं। ॥५॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्
॥६॥

सत्य ही विजयी होता है, झूठ नहीं क्योंकि वह देवयान नामक मार्ग सत्य से परिपूर्ण है। जिसमें पूर्ण काम ऋषि लोग वहाँ गमन करते हैं। जहाँ वह सत्य स्वरूप परब्रह्म परमात्मा उत्कृष्ट धाम है। ॥६॥

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यन्त्विहैव निहितं गुहायाम् ॥७॥

वह परब्रह्म महान दिव्य और अचिन्त्यत्वरूप है तथा वह सूक्ष्म से भी अत्यंत सूक्ष्मरूप से प्रकाशित होता है। तथा वहा दूर से भी अत्यंत दूर है और इस शरीर में रहकर अत्यंत समीप भी है। यहाँ देखने वालों के भीतर ही उसकी ह्रदय रुपी गुफा में स्थित है। ॥७॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं

ध्यायमानः ॥८॥

वह परमात्मा न तो नेत्रों से, न वाणी से और न दूसरी इन्द्रियों से ही ग्रहण करने में आता है। तथा तप से अथवा कर्मों से ही वह ग्रहण नहीं किया जा सकता। उस अवयवरहित परमात्मा को तो विशुद्ध अन्त:करण वाला साधक उस विशुद्ध अन्त:करण से निरन्तर उसका ध्यान करता हुआ ही ज्ञान की निर्मलता से देख पाता है। ॥ ८॥

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश ।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥९॥

जिसमे पॉच भेदोवाला प्राण भली भॉति प्रविष्ट है उसी शरीर में रहनेवाला यह सूक्ष्म आत्मा मन से जानने योग्य है। प्राणियों का वह सम्पूर्ण चित्त प्राणों से व्याप्त है। जिस अन्तःकरण के विशुद्ध होने पर यह आत्मा सब प्रकारसे समर्थ होता है ॥ ९ ॥

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेत् भूतिकामः ॥१०॥

विशुद्ध अन्तःकरण वाला मनुष्य जिस-जिस लोक को मन से चिन्तन करता है। तथा जिन भोगों की कामना करता है, उन-उन लोकों को जीत लेता है और उन इच्छित भोगों को भी प्राप्त कर लेता है। इसीलिये ऐश्वर्य की कामना वाला मनुष्य शरीर से भिन्न आत्मा को जाननेवाले महात्मा का सत्कार करे। ॥१०॥

॥ इति मुण्डकोपनिषदि तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥१॥

॥ श्री हरि ॥

॥ मुण्डकोपनिषद ॥

॥तृतीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः॥

द्वितीय खण्ड

स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥ १॥

वह निष्काम भाव वाला पुरुष इस परम विशुद्ध प्रकाशमान ब्रह्मधाम को जान लेता है। जिसमें सम्पूर्ण जगत् स्थित हुआ प्रतीत होता है। जो भी कोई निष्काम साधक परम पुरुष की उपासना करते हैं, वह बुद्धिमान रजोवीर्यमय इस जगत को अतिक्रमण कर जाते हैं। ॥१॥

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र ।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २॥

जो भोगों को आदर देनेवाला मानव उनकी कामना करता है। वह उन कामनाओं के कारण उन-उन स्थानों में उत्पन्न होता है जहाँ वह उपलब्ध हो सकें। परन्तु जो पूर्णकाम हो चुका है, उस विशुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुष की सम्पूर्ण कामनाएँ यहीं सर्वथा विलीन हो जाती हैं। ॥२॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥ ३॥

यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्दि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है। यह जिसको स्वीकार कर लेता है। उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि यह आत्मा परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देता है। ॥३॥

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिङ्गात् ।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥ ४॥

यह परमात्मा बलहीन मनुष्य द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता तथा प्रमाद से अथवा लक्षणरहित तप से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। किन्तु जो बुद्धिमान साधक इन उपायों द्वारा प्रयत्न करता है, उसका यह आत्मा ब्रह्म धाम में प्रविष्ट हो जाता है। ॥४॥

सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥ ५॥

सर्वथा आसक्ति रहित और विशुद्ध अन्त: करण वाले ऋषिलोग इस परमात्मा को पूर्णतया प्राप्त होकर ज्ञान तृप्त एवं परम शांत हो जाते है। अपने-आप को परमात्मा मे संयुक्त कर देने वाले वह ज्ञानीजन सर्वव्यापी परमात्मा को सब ओर से प्राप्त करके सर्वरूप परमात्मा में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। ॥५॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ६॥

जिन्होंने वेदान्त-उपनिषद् शास्त्र के विज्ञान द्वारा उसके अर्थभूत परमात्मा को पूर्ण निश्चयपूर्वक जान लिया है तथा कर्मफल और आसक्ति के त्यागरूप योग से जिनका अंत:करण शुद्ध हो गया है। वह समस्त प्रयत्नशील साधक गण मरणकाल में शरीर त्यागकर ब्रह्म लोक मे जाते हैं और वहाँ परम अमृतस्वरुप होकर सर्वथा मुक्त हो जाते हैं। ॥६॥

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वे एकीभवन्ति ॥ ७॥

पंद्रह कलाएँ और सम्पूर्ण देवता अर्थात् इन्द्रियाँ अपने अपने अभिमानी देवताओं में जाकर स्थित हो जाते हैं। फिर समस्त कर्म और विज्ञानमय जीवात्मा, यह सभी परम अविनाशी परब्रह्म में एक हो जाते हैं।॥ ७॥

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८॥

जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ नाम-रूप को छोड़कर समुद्र में विलीन हो जाती है, वैसे ही ज्ञानी महात्मा, नाम रूप से विमुक्त होकर उत्तम-से-उत्तम दिव्य परमपुरुष परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। ॥८॥

स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति।
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ ९॥

निश्चय ही जो कोई भी उस परम ब्रह्म परमात्मा को जान लेता है। वह महात्मा ब्रह्म ही हो जाता है, उसके कुल में ब्रह्म को न जाननेवाला नहीं होता। वह शोक से पार हो जाता है, पाप समुदाय से तर जाता है और हृदय की गॉठो से सर्वथा छूटकर अमर हो जाता है। ॥९॥

तदेतदृचाऽभ्युक्तम् ।
क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः ।
तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम् ॥ १०॥

उस ब्रह्मविद्या के विषय में यह बात ऋचा द्वारा कही गयी है, जो निष्काम भाव से कर्म करने वाले वेद के अर्थ के ज्ञाता तथा ब्रह्म के उपासक हैं और श्रद्धा रखते हुए स्वयं 'एकर्षि' नामवाले प्रज्वलित अग्नि में नियमानुसार हवन करते हैं। तथा जिन्होंने विधिपूर्वक सर्वश्रेष्ठ व्रत का पालन किया है, उन्हीं को यह ब्रह्मविद्या बतानी चाहिये। ॥१०॥

तदेतत् सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते ।
नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ११॥

उसी सत्यको अर्थात् यथार्थ विद्या को पहले अंगिरा ऋषि ने उवाच कहा था। जिसने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं किया है, वह इसे नहीं पढ़ सकता अर्थात् इसका गूढ अभिप्राय नहीं समझ सकता। परम ऋषियों को नमस्कार है, परम ऋषियोको नमस्कार है॥ ११ ॥

॥ इति मुण्डकोपनिषदि तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥२॥

॥ तृतीय मुण्डक समाप्त ॥३॥

॥ हरि ॐ ॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाभद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्तुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके उसका उपभोग करें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

जिनका सुयश सभी ओर फैला हुआ है, वह इन्द्रदेव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले पूषा हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, हमारे जीवन से अरिष्टों को मिटाने के लिए चक्र सदृश्य, शक्तिशाली गरुड़देव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें तथा बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ इत्यथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषत्समाप्ता ॥

॥अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥